2022-23 J.J.A.(H.C.) 1st shift. 21/09/2023

Question ID : **699110466**

Q. 1 The new proviso to Section 19 mandating that the competent authority shall endeavour to convey the decision on the proposal for sanction within a period of three months can only be read and understood as a compelling statutory obligation. In the first place, the consistent effort made by all branches of the State, the Judiciary, the Legislative, and the Executive, to ensure early decision-making by the competent authority cannot be watered down by lexical interpretation of the expression endeavour in the proviso. Public confidence in the maintenance of the Rule of Law, which is fundamental in the administration of justice, is at stake here. By causing delay in considering the request for sanction, the sanctioning authority stultifies judicial scrutiny, thereby vitiating the process of determination of the allegations against the corrupt official. Delays in prosecuting the corrupt breeds a culture of impunity and leads to systemic resignation to the existence of corruption in public life. Such inaction is fraught with the risk of making future generations getting accustomed to corruption as a way of life. Viewed in this context, the duty to take an early decision inheres in the power vested in the appointing authority to grant or not to grant sanction. The intention of the Parliament is evident from a combined reading of the first proviso to Section 19, which uses the expression endeavour with the subsequent provisions. The third proviso mandates that the extended period can be granted only for one month after reasons are recorded in writing. There is no further extension. The fourth proviso, which empowers the Central Government to prescribe necessary guidelines for ensuring the mandate, may also be noted in this regard. It can thus be concluded that the Parliament intended that the process of grant of sanction must be completed within four months, which includes the extended period of one month also. If it is mandatory for the sanctioning authority to decide in a time-bound manner, the consequence of non-compliance with the mandatory period must be examined. The criminal proceedings must be quashed if the decision is not taken within the prescribed period.

2022-23 J.J.A. (H.C.) IInd shift. 21/09/2023

Question ID : **699110418**

Q. 1 Section 18 of the Domestic Violence Act relates to protection order. In terms of Section 18 of the Act, intention of the legislature is to provide more protection to woman. Section 20 of the Act empowers the court to order for monetary relief to the aggrieved party. When acts of domestic violence are alleged, before issuing notice, the court has to be prima facie satisfied that there have been instances of domestic violence. In the present case, the respondent has made allegations of domestic violence against fourteen appellants. Appellant No.14 is the husband and appellants No.1 and 2 are the parents-in-law of the respondent. All other appellants are relatives of parents-in-law of the respondent. Appellants No. 3, 5, 9, 11 and 12 are the brothers of father-in-law of the respondent. Appellants No. 4, 6 and 10 are the wives of appellants No. 3, 5 and 9 respectively. Appellants No. 7 and 8 are the parents of appellant No. 1. Appellants No. 1 to 6 and 14 are residents of Chennai. Appellants No. 7 to 10 are the residents of Rajasthan and appellants No. 11 to 13 are the residents of Gujarat. Admittedly, the matrimonial house of the respondent and appellant No. 1 has been at Chennai. In so far as appellant No.14 husband of the respondent and appellants No. 1 and 2 Parents-in-law, there are averments of domestic violence alleging that they have taken away the jewellery of the respondent gifted to her by her father during marriage and the alleged acts of harassment to the respondent. There are no specific allegations as to how other relatives of appellant No.14 have caused the acts of domestic violence. It is also not known as to how other relatives who are residents of Gujarat and Rajasthan can be held responsible for award of monetary relief to the respondent. The High Court was not right in saying that there was prima facie case against the other appellants No. 3 to 13. Since there are no specific allegations against appellants No. 3 to 13, the criminal case of domestic violence against them cannot be continued.

2022-23

J.J.A.(H.C.) I^st shift. 29/12/23

Question ID : **6991101294**

Q. 1 न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 2(ख) अनुसार सिविल अवमान से किसी न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री, निदेश, आदेश, रिट या अन्य आदेशिका की जानबूझकर अवज्ञा करना अथवा न्यायालय से किये गये किसी वचनबंध को जानबूझकर भंग करना अभिप्रेत है। न्यायदृष्टांत रमा नारंग विरूद्ध रमेश नारंग एवं अन्य, अवमान याचिका (सिविल) क्रमांक 92/2008 निर्णय दिनांक 19.01.2021 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया है कि सिविल अवमान की परिधि के अंतर्गत कोई कार्यवाही लाये जाने हेतु किसी न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री, निदेश, आदेश, रिट या अन्य आदेशिका की जानबूझकर अवज्ञा अथवा न्यायालय से किये गये किसी वचनबंध का जानबूझकर भंग होना चाहिए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अवमान के हथियार का उपयोग प्रचुरता में नहीं किया जाना चाहिए और न ही इस हथियार का दुरूपयोग किया जाना चाहिए। सामान्य रूप से इसका उपयोग किसी ऐसी डिक्री के निष्पादन हेतु या ऐसे किसी आदेश के कार्यान्वयन हेतु नहीं किया जा सकता जिसके निष्पादन या कार्यान्वयन के लिये विधि द्वारा वैकल्पिक उपचार उपलब्ध कराये गये हैं। न्यायालय के इस विशेषाधिकार का उपयोग न्यायालय की गरिमा और विधि के गौरव के संरक्षण हेतु किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त किसी व्यथित पक्षकार को यह हठ करने का अधिकार नहीं है कि न्यायालय द्वारा अवमान सम्बंधी क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि अवमानना, न्यायालय एवं अवमाननाकर्ता के मध्य की कार्यवाही है। इसी प्रकरण में यह भी अवधारित किया गया है कि ऐसा डिक्रीधारी, जो विधि द्वारा प्रतिपादित प्रक्रिया के अनुसार डिक्री के निष्पादन हेतु कार्यवाही नहीं करता है, को धन सम्बंधी डिक्री के अपालन के सम्बंध में न्यायालय के अवमान संबंधी क्षेत्राधिकार को आमंत्रित करने हेतु बढ़ावा नहीं देना चाहिए तथा जहां तक संभव हो धन सम्बंधी डिक्री के अपालन की दशा में न्यायालय को शासकीय अधिकारियों को अवमान हेतु आहूत करने में त्वरित नहीं होना चाहिए।

Question ID : **6991101296**

Q. 1 हमारी राय में उपरोक्त वर्णित प्रश्न संवैधानिक अपेक्षाओं का भाग है। इन अपेक्षाओं को पक्षकार द्वारा अपने अभिवचनों में उचित रूप से अभिवचनित और विधि के अनुरूप साक्ष्य की मदद से साबित किया जाना चाहिए, तब केवल न्यायालय ही विवेकाधिकार प्रयोग करने का हकदार है और पक्षकार को मामले के आधार पर विनिर्दिष्ट पालन का अनुतोष प्रदत्त या अस्वीकृत कर सकता है। हम पाते हैं कि दोनों निचले न्यायालयों ने अभिवचनों व साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए इन प्रश्नों पर विचार किया है तथा वादी के विरूद्ध यह धारित करते हुए स्पष्ट निष्कर्षित किया है कि वादी संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए न तो तैयार था और न ही रजामंद और इस प्रकार वह वादग्रस्त-सम्पत्ति के संबंध में प्रतिवादी के विरूद्ध विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा करने का हकदार नहीं था। यह भी धारित किया गया कि वादी अग्रिम धनराशि की वापसी के किसी अनुतोष का दावा करने का हकदार नहीं था क्योंकि, यह उनके मध्य सहमति के अनुरूप समायोजित किये जाने योग्य है। दोनों निचले न्यायालयों ने अभिनिर्धारित किया कि वादी संविदा के अपने भाग के पालन की तत्परता और रजामंदी साबित करने में असफल रहा है। हमारे विचार में तैयार रहने और रजामंद होने का विवाद्यक संविदा के विनिर्दिष्ट पालन को प्रदत्त किए जाने के विचारण में सबसे महत्वपूर्ण विवाद्यक है और ऐसा ही दोनों निचले न्यायालयों द्वारा वादी के विरूद्ध साक्ष्य के मूल्यांकन पर धारित किये जाने के कारण यह इस न्यायालय पर बंधनकारी है। यह आत्यंतिक तथ्य का प्रश्न होने के कारण यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील को सुनते हुए संपूर्ण साक्ष्य के फिर से मूल्यांकन का इच्छुक नहीं है। यह तब और, जबकि अपीलार्थी निष्कर्ष में कोई अनुचितता अथवा अवैधानिकता दिखाने में सक्षम नहीं था, जिससे निष्कर्ष में इस न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप अपेक्षित हो।